सगुण भक्त-कवियों का काव्य-चिन्तन

(कबित विवेक एक नहीं मोरे)

भक्ति आन्दोलन के साथ आयी काव्यदृष्टि के साथ भारतीय समाज, संस्कृति, साहित्य और सभ्यता के विकास का एक नया दौर इसीलिए शुरू होता है, क्योंकि यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन है, जिसकी चिन्ताएं, स्वप्न व्यापक हैं। इसीलिए रामविलास जी इसे 'लोक जागरण' के रूप में देखते हैं, हजारी प्रसाद द्विवेदी जी 'धर्म और मानवता की एक नयी चेतना' के रूप में रेखांकित करते हैं, तो मैनेजर पाण्डेय 'सामंती संस्कृति के विरूद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का अखिल भारतीय आन्दोलन' के रूप में स्मरण करके उसे संस्कृति और साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि स्वीकार करते हैं। इस काव्यदृष्टि ने संस्कृति के इतिहास में शास्त्रों की रूढ़ियों, प्रस्थानत्रयी की भूमिकाओं को अस्वीकार करके या उनका संस्कार करके लोकमन की आस्थाओं, मूल्यों को महत्त्व देकर सांमती समाज व्यवस्था और उसकी विचारधारा के मानव विरोधी पक्षों की नींव हिला दी थी। इसीलिए इनका मार्ग लोकानुभव की जनतांत्रिकता, लोकमंगल एवं समतावादी समाज व्यवस्था का मार्ग है। इनके काव्यलोक, अनुभवलोक, काव्यसाधना का क्षेत्र लोक एवं उसकी जीवनानुभूतियाँ हैं। उनके काव्य में सामान्य जनता की संस्कृति है, तो उसकी आस्थाओं, मूल्यधर्मिता की ध्वनियाँ भी, इसीलिए लोकजीवन ही उनकी कविताओं का संचालक है; भावलोक, काव्यचिन्तन का केन्द्रीय तत्त्व है। इनका काव्य चिन्तन सामंती संस्कृति और इससे जुड़ी दरबारी संस्कृति के विरूद्ध जनसंस्कृति के उत्थान का लोकाश्रयी काव्य है। यह चिन्तन एक ओर पुरोहितवाद, धार्मिक कठमुल्लापन, सामाजिक विषमता की रूढ़ियों से टकराता है, तो दूसरी ओर समतावादी समाज व्यवस्था, जनाकांक्षाओं के कल्पनालोक का विज़न भी प्रस्तुत करता है, जो कृष्णभक्त कवियों के यहाँ गोलोक के रूप में है, तो रामभक्त

कवियों के यहाँ रामराज्य के रूप में।

कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास के व्यक्तित्व में भक्ति चेतना, उनकी अनुभूति सघनता, उनके काव्यचिन्तक रूप को संचालित कर रही है। सूरसागर और सूरसरावली में सूरदास की दृष्टि मुख्यतः भाव पर केन्द्रित है, सिद्धान्त विवेचन का कोई प्रत्यक्ष प्रतिपादन नहीं हुआ है। साहित्य लहरी के दृष्टकूट पदों में काव्यशास्त्रीय विवेचन मिलता है, किन्तु साहित्य लहरी की प्रामाणिकता को लेकर विवाद है। डॉ0 ब्रजेश्वर वर्मा और डॉ0 सत्येन्द्र ने इसे सूर की रचना नहीं माना है, किन्तु अनेक स्थल ऐसे हैं, जहाँ सूरदास ने अपने प्रयोजन एवं हेतु को स्पष्ट करने के साथ ही काव्यादर्श की भी व्यंजना की है। प्रयोजन के प्रश्न पर सूरदास अन्य भक्त कवियों की तरह ही ब्रह्मानन्द को मुख्य कसौटी मानते हैं तथा उनकी दृष्टि में लोकरंजन भी काव्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है -

.. सूरदास यह लीला गावै, कहत सुनत सबकैं मन भावै।[1]

.. राधा-कृष्ण-केलि कौतूहल, स्रवन सुनैं, जो गावैं।
तिनकै सदा समीप स्याम, नितहीं आनंद बढ़ावैं।।[2]

सूर की कविता का आदर्श मनुष्य को संसार के विकारों से दूर करने वाला है --

यह लीला आचरज की, सूरदास कही गाइ।
ताकौ जो गावै सुनै, सो भव-जल तरिजाई।।[3]

जहाँ तक काव्यहेतु का प्रश्न है सूरदास अन्य भक्तकवियों की तरह ही दैवीकृपा एवं गुरु कृपा को काव्य का हेतु मानते हैं --

.. गौरि गनेस्वर बीनउँ (हो), देवी सारद तोहिं।
गावौ हरि कौ सोहिलो (हो), मन-आखर दै मोहिं।।

.. हरि लीला अवतार पार सारद नहिं पावै।
सतगुरु कृपा-प्रसाद कछुक तातैं कहि आवै।।[4]

कहना न होगा कि सूरदास ने काव्य-रचना के साधनों पर काव्यशास्त्रीय जिज्ञासा के साथ विचार नहीं किया, इस दृष्टि से कृष्ण भक्त कवियों में नन्ददास उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'रस मंजरी' और 'विरह मंजरी' की तो रचना ही रीतिकाव्य पद्धति के अन्तर्गत की है, 'रासपंचाध्यायी' एवं 'रूपमंजरी' में भी काव्य-सिद्धान्त

नन्ददास उल्लेखनीय है और नन्ददास के काव्यशास्त्रीय व्यक्तित्व को देखकर रीतिकालीन काव्यचिन्तन हिन्दी में अचानक खड़ी होने वाली प्रवृत्ति नहीं लगती। आगे चलकर रीतिकाल के कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा से जो रिश्ता बनाया, नन्ददास के कृतित्व एवं चिन्तन में इसका पूर्वाभास दिखाई देता है। नन्द दास भक्तिकाल एवं रीतिकाल को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

राम भक्ति शाखा के कवियों में **गोस्वामी तुलसीदास** का व्यक्तित्व उस शाखा के कवियों में सर्वाधिक विशिष्ट, मौलिक एवं नवीन उद्‌भावनाओं का वाहक है। वे भक्ति काल के एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने न केवल भाषा के आभिजात्य को तोड़ा, बल्कि चिन्तन एवं संवेदना के धरातल पर भी लोक चेतना, लोक मूल्यों को स्थापित किया। तुलसी के समय में 'भाषा' अर्थात् लोकभाषा, जन भाषा की कविता का सम्मान नहीं था। दण्डी ने तो महाकाव्य के लिए संस्कृत के प्रयोग को अनिवार्य ही कर दिया था --

संस्कृतं सर्गबन्धादि प्राकृतं स्कन्धकादिकम्।
आसेरादिरपभ्रंशों नाटकादि तु मिश्रकम्।।

तुलसी के समकालीन आचार्य केशवदास ने अपने को देववाणी संस्कृत से विमुख होकर 'भाषा' अर्थात् जनभाषा में काव्य रचना करने के कारण स्वयं को 'मंद्‌मति' कहकर कोसा भी है - "भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास। भाषा-कवि भो-मंदमति तिहि कुल केसवदास'।[14] तुलसी लोकवादी है, उनकी चेतना में लोक जागरण का संदेश है, इसीलिए उन्होंने सर्वप्रथम भाषा की जड़ता को ही अपना लक्ष्य बनाया -- 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।' तुलसी की दृष्टि में काव्य की ग्राह्यता और लोकप्रियता के लिए भाषा की सरलता, सहजता आवश्यक है, क्योंकि भाषा चिन्तन एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है -

सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान।।[15]

और इस कवित्त का लक्षण है --

वर्णानामर्थसंधानां रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वंदे वाणी विनायकौ।।[16]